॥ श्रीः ॥

महर्षि सिद्धनागार्जुन प्रणीत

आश्चर्ययोगमाला तन्त्र ।

सुखानन्द मिश्रात्मज, मुरादाबाद निवासी स्वर्गीय

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्रने

तान्त्रिक जनोंके हितार्थ

भाषाटीका किया ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७ वी गली खम्बाटा लेन,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रण यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९७० शक १८३५

॥ श्रीः ॥

महर्षि सिद्धनागार्जुन प्रणीत

आश्चर्ययोगमाला तन्त्र ।



सुखानन्द मिश्रात्मज, मुरादाबाद निवासी स्वर्गीय

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्रने

तान्त्रिक जनोंके हितार्थ

भाषाटीका किया ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रण यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९७० शक १८३५

॥ श्रीः ॥

आश्चर्ययोगमाला ।

भाषाटीकासमेता प्रारभ्यते ।



विमलमतिकिरणनिकरप्रभिन्नसच्छिष्यकमलसंघाताः । सकलभुवनैकदीपा जयन्ति गुरुभास्करा भुवने ॥ १ ॥

भाषार्थ-निर्मल बुद्धिरूप किरणोंसे प्रफुल्लित हैं कमलरूप सत् शिष्यसमूह जिनका ऐसे, सम्पूर्ण भुवनोंको दीपसदृश प्रकाशके देनेवाले, भास्कर (सूर्य) रूप श्रीगुरुजी त्रिभुवनमें जयको प्राप्त हों ॥ १ ॥

स्पष्टाक्षरपदसूत्रैर्गुरुमतरत्नाकरात्समुद्धृत्य । ग्रथिता परिस्फुरन्ती निगद्यते योगरत्नमालेयम् ॥ २ ॥

भाषार्थ-रत्नाकर (समुद्र) रूप श्रीगुरु महाशयके मतसे निकालकर प्रकाशवती यह योगरत्नमाला प्रकटवर्ण

...तडन्तादि पदरूप सूत्रोंसे ग्रथितकर प्रकाश करी जाती है ॥ २ ॥

सितभानुविटपिमूलं मञ्जिष्ठाभवनचटकमूर्द्धास्रम् । कुष्ठं स्वाङ्गक्षतभवदिग्धैस्त्रिभुवनमेभिर्वशीकुरुते ॥ ३ ॥

भाषार्थ–सफेद आकके वृक्षकी जड, मजीठ, गृहचटकके शिरका रुधिर, कूट इन सबको अपने रुधिरमें मिलाकर गुटिका बना जिस व्यक्तिको खान पानमें दे अवश्य वह व्यक्ति वश्यभावको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

तालं पिशाचभुवने भूतान्हि प्रेतवदनपर्युषितम् । रोगेन्द्रसंप्रयुक्तं त्रिभुवनवशकारकं तिलकम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ–कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन पुष्य नक्षत्रमें श्मशानमें स्थित हो कूट और हरिताल इन दोनो औषधियोंको एकत्रित कर गुटिका बना तिलक करे तो तीनों लोकोंको वश्यभावका पात्र बना सकताहै अन्य साधारण मनुष्योंका तो कथनही क्या है ॥ ४ ॥

मृतनरलोचनलोलाललाटहृद्घ्राणसाधितं तैलम् । सकलनराधिपललनावशंकरं शङ्करालये पुष्ये ॥ ५ ॥

भाषार्थ–कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन पुष्य नक्षत्रमें श्मशानमें स्थित हो मृतक पुरुषके नेत्र, जिह्वा, मस्तक हृदय, नासिका इनके तेलको सिद्धकर तिलक करे तो राजस्त्रियोंको भी वश करनेमें समर्थ हो अन्य स्त्रियांकी तो कथा ही क्या है ॥ ५ ॥

नरतैलं नृकपाले प्रेताम्बरवर्तितः क्षपायां हि । क्षोणीरुहेन्द्रशिखरेसमुज्ज्वाल्यकज्जलंकुर्यात् ६

भाषार्थ–मनुष्यके तेलको मनुष्यके कपालमें भरकर मृतक पुरुषके वस्त्रकी वत्ती बनाकर कृष्णपक्षकी रात्रिमें अश्वत्थ वृक्षके स्कन्ध (गुद्दा) के ऊपर मज्वलित कर कज्जल बना नेत्रोंमें आंजे तो जगत् वश्य होय ॥ ६ ॥

अथ विद्वेषणम् ।

उरगारिशिरोजनितो धूपवरस्ताम्रचूडशिरसा च । त्रिभुवनभवनेषु गतः क्षिप्रं प्रीतिं विनाशयति ॥ ७ ॥

भाषार्थ–कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन मयूर, कुक्कुट इनके शिरकी धूपका जिस किसी व्यक्तिके स्थानमें नामोच्चारणपूर्वक प्रयोग किया जाय तो निश्चयही अत्यन्त प्रीति क्यों न हो तथापि विद्वेष उत्पन्न होगा ॥ ७ ॥

ऋतुमतिदुर्भगललनाकुसुमगृहे सप्तदिवसपर्युषितैः । सितसिद्धार्थैः स्पृष्टस्त्रैलोक्ये को न याति विद्वेषम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ–ऋतुमती दुर्भगा स्त्रीके कुसुमगृहमें सात दिनतक सिद्ध हुए सरसोंके स्पर्शमात्रसे, ऐसी कौनसी व्यक्ति है जो विद्वेषको न प्राप्त होगी । अर्थात् सम्पूर्ण विद्वेषको प्राप्त होगी ॥ ८ ॥

द्विकदिवसभीरुपक्षप्रभवो धूपः प्रयोजितः प्री-

तिम् । हन्यान्नरेन्द्रमुख्यैः सचराचरजन्तुजातस्य ॥ ९ ॥

भाषार्थ-श्रेष्ठ पुरुषों करके प्रयोग की हुई, काक तथा उल्लूके पक्षकी धूप सचराचर जन्तु मात्रकी प्रीतिको तोडकर विद्वेष पैदा करती है ॥ ९ ॥

भुजगेंद्रकंचुकोत्थो मयूरपक्षभागसंमिश्रः । धूपः प्रयुक्तमात्रो विद्वेषकरस्त्रिलोकस्य ॥१०॥

भाषार्थ-मयूर पक्षको सम भाग सर्पकी केंचलीमें मिलाकर प्रयोग करे तो त्रिलोकका भी वश्य होगा ॥ १० ॥

अथोच्चाटनाधिकारः ।

तुरगखुररंध्रनिहितं नागशिरः कुक्कुटरसनासहितम् । भुवनद्वारिनिखातं रिपुमुच्चाटयति सप्ताहे ॥ ११ ॥

भाषार्थ-कृष्ण सर्पके शिरको तथा कुक्कुटकी रसनाको मिश्रितकर घोडके खुरमें बन्दकर शत्रुके दरवाजे पर गाड दे तो सात दिनमें शत्रुका उच्चाटन हो जायगा ॥ ११ ॥

योगान्तरमाह।

हलिनीवराहवर्चःशवमूर्द्धजदीर्घकन्दरास्थीनि । त्रिभुवनमपि योगवरः स्फुटमुच्चाटयति सप्ताहे ॥ १२ ॥

भाषार्थ-दूसरा योग और कहा जाता है । करिहारी, शूकरविष्टा, मृतककपाल, ऊंटकी हड्डी इन सबको एकत्रित कर पूर्ववत् अश्वके खुरमें बंदकर शत्रुके स्थानपर गाड देवे तो सात दिनमें त्रिभुवन भी उच्चाटनको प्राप्त हो सकेगा शत्रुका तो कहनाही क्या है ॥ १२ ॥

मृतकपुरुषास्थिशंकुर्भवनद्वारे निखन्यते यस्य । तस्य गृहगतविभवं भयंकरं पिशाचभवनाभम् ॥ १३ ॥

भाषार्थ-मृतक पुरुषकी अस्थि जिस व्यक्तिके गृह द्वारको खोदकर दाब दियाजाय तो उस व्यक्तिका स्वगृह विभव शून्य पिशाच भवन (श्मशान) सदृश अतिभयंकर प्रतीत होगा ॥ १३ ॥

दण्डकरपुरुषचोदितजवविचलितदीर्घकन्द-
रारूढम्। सुरगुरुमपि सप्ताहाद् ध्यायन्नुच्चाट-
येत् स्थानात् ॥ १४ ॥

भावार्थ-अब ध्यान योग कहाजाता है। दण्डको हाथमें धारण कर शीघ्र गमन करनेवाले उष्ट्रके ऊपर आरूढ पुरुषका ध्यान करे तो सात दिनमें बृहस्पतिका स्वस्थानसे उच्चाटन करनेमें समर्थ होगा अन्य साधारण मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ॥ १४

उच्चाटनाधिकारसमाप्त ॥

अथ दर्पणे रूपदर्शनम्।

रक्तहयमारकुसुमं भल्लातकमम्लवेतसमम्भो-
भिः। दर्दुरवसाविमिश्रैस्तेषां रूपाणि पूर्वव-
त्पश्येत् ॥ १५ ॥

भावार्थ-दर्पणमें रूप दर्शन प्रकार कहा जाता है। रक्त करवीरके पुष्पको भल्लातक (भेलावां) को, अम्लवेतको दर्दुरकी वसामें मिलाकर शीशेके ऊपर लेपकर देखे तो अश्व, गर्दभ, उष्ट्र इनके स्फुट रूप दिखाई देवैंगे ॥ १५

अंकोलतैलकज्जलसुरभिक्षारैर्दृगञ्जनं पुष्पे । पश्यति दर्पणमध्ये रूपाणि भवान्तरेयानि १६

भावार्थ-अंकोल वृक्षके बीजोंके तेलसे कज्जलको बनाकर गौके घृतमें मिला आँखोंमें आंजकर यदि दर्पणमें देखे तो अपने पूर्व जन्मके सम्पूर्ण स्वरूप दीखेंगे ॥ १६ ॥

अंजितनयनो मनुजस्तगरफलमकोलतैलकल्केन । पश्यतिपुरुषंदिव्यंप्रकृतिंतगराञ्जनाद्व्रजति ॥ १७ ॥

भावार्थ-तगरके फलको अंकोलके तेलमें कल्ककर यदि नेत्रोंमें आंजे तो दिव्य पुरुषका दर्शन होगा । यदि परिहार करना है तो केवल तगरके चूर्णको ही नेत्रोंमें आंज पुनः अपनी पूर्व प्रकृति प्राप्त होजायगी ॥ १७ ॥

अथ चित्ररोदनम् ।

ललनाजरायुधूपाच्चित्रं भित्तौ प्ररोदति प्रकटम् । पुनरपि गुग्गुलुधूपात्प्रकृतिं निजां व्रजत्याशु ॥ १८ ॥

भाषार्थ-यदि दीवारके ऊपर खिची हुई पुतलीका रोदन देखना अंगीकार हो तो उक्त पुतलीको उक्त स्त्रीके जरायुकी धूप दो अथवा असली हालतमें लाना हो तो सिर्फ गूगलकी धूप दो। तो रोदन बन्द हो अपनी पूर्व दशा प्राप्त हो जायगी ॥ १८ ॥

वृषदंशवरपुरंध्र्याजरायुधूपान्न दृश्यते भित्तौ।
प्रकृतित्वमेति भूयःकौशिकधूपेन धूपितं चि-
त्रम् ॥ १९ ॥

भाषार्थ-यदि दीवारके ऊपर स्थित पुतलीको बिल्ली तथा श्रेष्ठ स्त्रीके जरायुकी धूप दीजाय तो वह पुतली दीवारके ऊपर न दिखाई देगी किन्तु गुप्त हो जायगी। और गूगलकी धूप दी जाय तो फिर पूर्ववत् स्वयं प्रकाश हो जायगी ॥ १९ ॥

करभकपोलस्वेदैर्मूत्रकफैर्भावितेन तालेन।
तेन करगर्भलेपाच्चित्राणि समाक्षिपत्याशु,२०

भाषार्थ-हाथीके कपोलका पसीना, मूत्र, कफ इन तीनोंको हरतालमें मिलाकर हाथकी हथेली पर घिसे तो भित्तिगत चित्रके अनेकों रूप दिखाई देवेंगे ॥ २० ॥

सरमाजरायुधूपितवेष्टितयुद्धादिनाहरेद्भ्रमणात् । सव्येनचित्रवर्णप्रभृतीन्यपसव्यतो मोक्षः ॥ २१ ॥

भाषार्थ–शुनीकी जरायुकी धूपमिश्रित प्रज्वलित कर युद्धके दिन दक्षिण हाथमें स्थापन करके घुमावे तो तत्क्षणमें शत्रुदलके चित्रवर्ण हो जायंगे अर्थात् काष्ठकी पुतलीके समान कुछ कार्य न कर सकेंगे । अथवा इस विषयका परिहार करना हो तो वामहस्तमें धारणकर पूर्ववत् क्रिया करो ॥ २१ ॥

अथ पुरुपान्तर्धानम् ।

श्रोतःशशांककंटकमधुमधुकप्रथमकुसुमसंयुक्ता । नवहलिनीकेशरजा गूहति गुटिका त्रिलोहगर्भस्था ॥ २२ ॥

भाषार्थ–श्रोताञ्जन, शशांक, कंटक, सहत, मुरेठी प्रथम रजस्वलाका रक्त, करिहारीका केसर इन सब वस्तुओंको एकत्रित कर गुटिका बनाय त्रिलोहके तबीजमें



बन्दकर गलेमें धारणपूर्वक यदि साध्य व्यक्तिका ध्यान करे तो उक्त व्यक्ति स्वयं प्राप्त हो आलिंगन करेगी ॥२२॥

नीलाशोकभवांकुरमेणकरक्तेनसप्तधाभ्यक्तम् ।
लोहत्रयगर्भगतं गृहति वक्रस्थितं जगदशेषम्२३

भाषार्थ-नील अशोक वृक्षके अंकुर चूर्णको हिरणके रुधिरमें सात भावना देकर त्रिलोह गर्भितकर मुखमें धारण करे तो जगत्मात्रका अन्तर्धान होजायगा पुरुष मात्रका तो कथनही क्या है ॥ २३ ॥

गोरोचनेंगुदीतरुकुसुमं मृतोद्भन्धिनाक्षिरोमा- णि । द्विकभुक्तोच्छिष्टयुता गुटिकेयं कल्पल- तिकाख्या ॥ २४ ॥

भाषार्थ-गोरोचन, इंगुवा वृक्षका पुष्प, मार्जारीका आंखि रोम इन सबको काकोच्छिष्टमें मिलाकर गुटिका बनाय त्रिलोहमें बन्दकर यदि मुखके मध्यमें रक्खी जाय तो पुरुष अदृश्य हो जायगा अर्थात् किसीको न दीखेगा। इस गुटिकाका कल्पलतिका नाम है ॥ २४ ॥

पितृवनमर्दितमृतुमतिरेतोमनःशिलायुक्तम् ।

त्रिभुवनमपि विनिगूहति तिलकक्रियया ल-
लाटतले ॥ २५ ॥

भाषार्थ--प्रथम रजस्वला कन्याके रजको मनशिलमें मिलाकर मस्तकमें तिलक किया जाय तो त्रिभुवन मात्र अदृश्य होगा मनुष्य मात्रका तो कथनही क्या है ॥ २५ ॥

नीलाशोकोत्तरदिग्वायसनी अंकुरैःकृतस्तिलकः । गूहति रोचनमिलितं मनुजं सचराचरं-
लोकम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ--नील अशोक वृक्षके उत्तर भागमें स्थित काक घोंसलेके समीप उत्पन्नहुए अंकुरको चूर्णकर गोरोचनमें मिलाकर मस्तकपर तिलक किया जाय तो चर अचर स्थावर जंगमात्मक सकल लोक अदृश्य होगा ॥ २६ ॥

पारावतस्य कुक्षौस्रोतोऽञ्जनं चितिकानलेन पुटपक्तम् । सिद्धाञ्जनं निगूहति निर्वाणन्तुगेहकोतुरुधिरेण ॥ २७ ॥

भाषार्थ--स्रोताञ्जनको कबूतरकी कुक्षिमें रखकर मृत्तिका पुट लगाय चिताकी अग्निमें पकाकर यदि नेत्रोंमें आंजे

तो अदृश्य भाव प्राप्त होगा । अथवा मोक्ष करनेकी इच्छा हो तो काले बिलावके रुधिरको आंखोंमें आंजे तो मोक्ष होगा । इसका नाम सिद्धांजन है ॥ २७ ॥

नवघ्नतृणांकुरोद्धृतमृन्मधुहरितालमिश्रिता पुष्ये । सिद्धिभ्योपि निगूहति ललाटतटतिलककरणेन ॥ २८ ॥

भाषार्थ–नवीन मेघ मण्डलमें उत्पन्न तृणांकुरांको उखाडकर मृत्तिका, हरिताल, सहत इनमें मिलाय गुटिका बनाकर पुष्य नक्षत्रके दिन यदि ललाट देशमें तिलक किया जाय तो सिद्धोंसे भी अदृश्य रहेगा ॥ २८ ॥

॥ अथ कुतूहलानि ॥

भ्रमरपरिपूर्णगर्भस्तिष्ठति आकाशमण्डले निहितः । साराहतांघ्रिपोद्भवशंकुः प्रकटयति विस्मयं लोके ॥ २९ ॥

भाषार्थ–जिसके भीतर भ्रमर व्याप्त हो ऐसी चित्रपर्णीलताके शंकुको यदि आकाश मण्डलमें फेंकाजाय तो

वह आकाश मण्डलमेंही स्थित रहेगा किन्तु किसी भाग-मेंभी चलायमान न होगा इस कुतूहलके देखनेसे मनुष्योंको अत्यन्त आश्चर्य होगा ॥ २९ ॥

विद्युद्विदग्धपादपशंकुः सरमाजरायुणार्द्रेण । त्रिकटुकयुतेनलिप्तो दशांगुलोवावतिष्ठते व्योम्नि ॥ ३० ॥

भाषार्थ--बिजलीसे दग्ध हुए वृक्षके दशांगुल मात्र शंकु (कीला) को सोंठ, मिर्च, पीपल और तुरतकी ब्याई हुई शुनीकी जरायुसे लिप्तकर यदि आकाशमें फेंकाजाय तो आकाशमेंही बहुत कालतक स्थित रहेगा ॥ ३० ॥

सरमाजरायुनिर्मित पाणिलतामुद्रिकाप्रभावेण । आलम्बनिरपेक्षं तिष्ठत्यम्भोरुहं व्योम्नि ॥ ३१ ॥

भाषार्थ–शुनीकी जरायुसे निर्मित अंगूठीको करांगुलिमें पहन कर यदि आकाश मण्डलमें कमल प्रक्षेप किया जाय तो निरालम्ब वह कमल चिरकाल आकाश मण्डलमें स्थिर रहेगा ॥ ३१ ॥

स्तन्याख्यबीजहोमाद्वितानसंछादितेऽम्बरेच-
ह्नौ। चन्द्रोदये प्रयोगाद् दृश्यन्ते शूलपाण-
यो रुद्राः ॥ ३२ ॥

भाषार्थ-वितान रूप आकाश मण्डलसे अच्छादित आगिमें चन्द्रोदयके समय अर्थात् चांदिनी रात्रिमें स्तब्ध (मुंडी) के बीजोंसे यदि हवन किया जाय तो शूलपाणी शिवजी महाराजकी मूर्तियां दीख पडेंगी ॥ ३२ ॥

कुरुसमिद्सारदारुणिगन्धमङ्कोलतैलसंलिप्ते।
तप्तघृतसूतहवनात् प्रज्वलनं भवति दहन-
स्य ॥ ३३ ॥

भाषार्थ-भटकटैया, ढाककी लकडी और अण्डकी लकडियोंमें अंकोलका तेल लगाकर एक स्थानमें धरदे, फिर गन्धक और पारेकी कजली करउस कजलीको गरम घीमें मिला इन लकडियोंमें चरुकी भांति डालनेसे स्वयं अग्निदेव प्रगट होकर उस चरुको ग्रहण करेंगे ॥ ३३ ॥

एवंविधेन्धनस्थे गन्धकपाषाणसम्भवो रेणुः।

तप्ताज्याहुतिहोमाज्झटिति प्रज्वालयत्यनलम् ॥ ३४ ॥

भाषार्थ–इस प्रकारके असार दारुमें गन्धक, भस्म, अंकोलका तेल, तप्त घृत इनकी आहुति प्रदान करे तो शीघ्रही अग्निदेव स्वयं प्रगट होकर चरुको ग्रहण करेंगे३४

कल्माषिकाविमर्दे वज्रानलदग्धपादपेऽरण्ये ।
ज्वलतिनितान्तंजनितोजलहवनाद्रैद्युतोवह्निः॥

भाषार्थ–बिजलीकी आगसे जलेहुए वनके वृक्षके कोयलेको उक्त द्रव्योंसे लिप्तकर असार दारुमें जलसे हवन करे तो बिजली सम्बन्ध वाली अग्नि भले प्रकार प्रज्वलित होगी जलमें ज्वालाका होना इसमें आश्चर्यकी बात है ३५

ऋतुमतिललनायोनौ सप्तदिनावासिनं क्रमात्सिद्धम् । प्रकटयति वह्निमध्ये हवनात्सौवीरकं पुरुषम् ॥ ३६ ॥

भाषार्थ–सात दिनतक ऋतुमती वनिताके कुसुमगृहमें बसा हुआ स्रोतोऽञ्जन अग्निकुण्डमें हवन करनेसे पुरुषरूपको दिखाता है ॥ ३६ ॥

शशिजजलौकादर्दुरतैलैरेभिः सपाटलामूलैः ।
चरणतलसंप्रलेपाद्भ्रमति नरोऽङ्गारखानिका-
मध्ये ॥ ३७ ॥

भाषार्थ-शैवाल, जोंक, मेडक, पाटला, (पाडरका वृक्ष) मूल इन सबको एकत्रित कर तेल पकावे और चरण- तलमें उक्त तेलका प्रलेप कर अङ्गारोंकी खानमें क्यों न फिरे किसी प्रकार दग्ध न होगा ॥ ३७ ॥

भेकवसांश्ववाणिकया जलौकसा चंद्रसंभवे-
र्युक्ता । करचरणसंप्रलेपात्प्रकरोति हि शीत-
लं वह्निम् ॥ ३८ ॥

भाषार्थ-मेढककी चर्बी, मुण्डी, जोंकका तेल, शैवाल, इन सब वस्तुओंको एकत्रित कर हाथ पैरोंपर लेपकर अग्निमें भ्रमण करनेसे शरीर न जलेगा किन्तु अग्नि शीतल भावको प्राप्त होगी ॥ ३८ ॥

जाठराग्निस्तम्भमाह ।

धवलप्लवङ्गमोद्भवरेणुं रुधिरेण रञ्जयेत्तस्य।

न पचति वर्षशतैरपि विभावसुः स्तम्भित-
स्तेन ॥ ३९ ॥

भाषार्थ-अब जठराग्नि स्तम्भन कहा जाता है । धवल मेंढकके चूर्णको धवल मेंढकके रुधिरमें भावना देकर अग्निमें प्रक्षेप करे तो उस अग्निमें पके हुये अन्नका भक्षण करनेवाले मनुष्यके उदरमें उक्त अन्नका कालान्तरमें भी पाक न होगा किन्तु अग्नि स्तम्भन अर्थात् उदरकी अग्निका स्तम्भन होनेसे पाकशक्तिका अभाव हो जायगा॥३९॥

तुरगखुररन्ध्रनिहितैर्नश्वेतसमूलभापयत्रभे-
कैः । न दहति रोमाण्यपि साधकस्य स्त-
म्भित एतैः प्रदीपितोऽप्यनलः ॥ ४० ॥

भाषार्थ-नल, बेंत इन दोनोंकी जड, भापयव (धान्य विशेष) मेंडक इन सब औषधियोंको घोडेके खुरमें रख कर अग्निमें प्रक्षेप करनेसे प्रदीप्त कियाहुआ भी अग्नि साधकके अङ्ग जलानमें समर्थ न होगा क्योंकि इन औषधियोंके प्रक्षेप करनसे अग्निमें स्तम्भन हो जाता है ॥४० ॥

जलस्तम्भनम्।

प्रक्षिप्य वदनमध्ये दुन्दुभरक्तं प्रविश्य जल मध्ये। निजभवनाभ्यन्तर इव तिष्ठेदात्मेच्छया धीमान् ॥ ४१ ॥

भापार्थ-दुमुई सर्पके रुधिरको मुखमें रखकर यदि जलके भीतर प्रवेश किया जाय तो जलका स्तम्भन होय और स्वगृहके तुल्य सुखपूर्वक जलमें स्थित होय अर्थात् किसी प्रकारका भय न हो ॥ ४१ ॥

स्योनाकबीजपूर्णं कृत्वाथारुह्य पादुकायुगलम्। मह्यामिव सलिलोपरि पर्यटति नरः सुविस्पष्टम् ॥ ४२ ॥

भापार्थ-अरलु वृक्षके बीजोंका चूर्णकर पादुकाओंपर प्रलेपकर शुष्क कर लेय तत्पश्चात् उक्त पादुकाओंपर चढ़ कर यदि जलमें गमन करे तो भूमि गमनके सदृश उक्त जलमें गमन करनेको समर्थ होगा ॥ ४२ ॥

नवनीतरुक्मगैरिकदुर्गन्धामीनतैलकल्केन। सकलस्रोतोभङ्गाद्भ्रमति नरोनकवत्सलिले४३

भापार्थ- नैनीघी, सुवर्ण, गेरू, प्याज, इन सबका कल्क बनाकर मछलीके तेलके साथ यदि मुखादि छिद्रोंमें लगाकर जलमें प्रवेश करे तो मनुष्य नक्रवत् अर्थात् नाकेके तुल्य जलमें भ्रमण करनेको समर्थ होगा ॥ ४३॥

गोगवलरन्ध्रनिहितैः श्रीफलकामांग्रिपैः पयः-पिष्टैः । स्तम्भयति यानपात्रं नावं तद्रंध्रगा गुटिका ॥ ४४ ॥

भापार्थ--अब अन्य कहा जाता है । विल्वफल, मदनफल (मैंनफल) इनके चूर्णको गौके दूधमें पीसकर गुटिका बनाकर गौके शृङ्ग मध्य छिद्रमें रख देय फिर सात दिनके बाद उक्त गुटिकाको निकालकर यान पात्र अर्थात् नावके छिद्रमें रखदेय तो नावका स्तम्भन होगा अर्थात् चल न सकेगी ॥ ४४ ॥

पिशाचीकरणम् ।

हेमवृक्षस्य बीजञ्च घुणचूर्णयुतन्तथा ॥ को-किलामिपसंयुक्तं प्रेतभावं करोति हि ॥४५॥

भापार्थ--धतूरेके बीजोंको घुनचूर्ण तथा काकिलाके मांसमें मिलाकर गुटिका बनावे तत्पश्चात् उक्त वटिका

खान पानमें जिस व्यक्तिको दी [illegible] तो वह व्यक्ति भक्षण मात्रसेही प्रेत भावको प्राप्त होय । इस प्रयोगका नाम पिशाचीकरण है ॥ ४९ ॥

प्रत्यानयनम् ।

गुणकांजिकद्रावं च पेयं स्वात्महिताय वै । प्रत्यानयनन्तु देवेशि जायते नाऽत्र संशयः ॥ ४६ ॥

भाषार्थ–यदि इस प्रयोगका उतार करना स्वीकार होय तो गुण और काञ्जिकाका द्राव पान करे हे देवेशि ! तत्क्षणमेंही स्वस्थता प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणविडालवानरचण्डालोलूकरोमाणि । पिष्टानि विरमवचैरुन्मादकराणि सर्वलोकानाम् ॥ ४७ ॥

भाषार्थ–ब्राह्मण, बिलाव, वन्दर, चाण्डाल, उल्लूक, इन सबके रोमोंको मार्जारकी विष्ठामें पीसकर गुटिका बनाय खान पानमें प्रदान करे तो साध्य व्यक्ति उन्मादको प्राप्त होय ॥ ४७ ॥

गोमायोर्लांगुलकं द्विकदक्षिणभागपक्षसंयुक्तम् । शयनन्यस्तं जनयति घोरं शत्रोरपस्मारम् ४८

भापार्थ—गीदड़की पूँछ, काकका दक्षिण पक्ष, इन दोनोंको एकत्रित कर शत्रुके शयन स्थानमें गुप्त भावसे रखदेय तो शत्रुके शरीरमें अपस्मार रोग उत्पन्न होगा ४८

कनकालमातुलिङ्गैः पारावतकेकिताम्रचूडा· नाम् । शकृन्मत्तं कुरुते विमदः केशान्तक· र्मणा भवति ॥ ४९ ॥

भापार्थ—धतूरा, हरताल, बिजौरा इन तीनों औष· धियोंको कबूतर, मोर, ताम्रचूड इनकी विष्ठामें पीसकर गोली बना लेय पुनः उक्त गोलीको खान पानमें प्रदान करे तो निश्चय शत्रुको उन्मत्तता प्राप्त होय । अथवा उतार करना स्वीकार होय तो शिरके बालोंको मुंडवा देय स्वस्थता प्राप्त होगी ॥ ४९ ॥

लोमशातनम् ।

हालाहललांगूलं सप्तदिनं कनकतैलपर्युषि·

तम् । शातयति केशनिवहं तथ्यमिदं रोमशातनं प्रवरम् ॥ ९० ॥

भाषार्थ–काले सर्पकी पूँछको धतूरेके तेलमें सात दिन तक भिगोवे तत्पश्चात् लोम स्थानमें लगावे तो स्वयंही लोम फट जायंगे । यह अनुभूत प्रयोग है इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं ॥ ९० ॥

बहुशो वज्रीपयसा भावितितिलतैलमूर्धजाभ्यङ्गात् । धवलवलाहककरुचयो भवन्ति केशा विनाभ्यङ्गात् ॥ ९१ ॥

भाषार्थ–बहुबार थूहरके दुग्धमें भावना दिये हुए तिलके तेलको यदि शिरके बालोंमें लगावे तो उक्त केश स्वच्छ मेघ सदृश धवल कान्ति विशिष्ट होजायगे । परन्तु उक्त तेलको शरीरके बालोंमें न लगावे क्योंकि कुष्ठसदृश श्वेत दागोंके होनेकी सम्भावना है ॥ ९१ ॥

सुधाष्टमभागालयुता जलालोडितानले तप्ता। शातयति केशजालं युक्ता सचराचरे जगति ॥ ९२ ॥

भापार्थ–आठ भाग सहतको एक भाग हरतालमें मिलाकर जलयुक्त कर अग्निमें पकावे तत्पश्चात् केशसमूहमें लगावे तो केशोंका समुदाय स्वयं कट जायगा यह प्रयोग सचराचर सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध है ॥ ९२ ॥

सैन्धवं हरितालं च यवक्षारसमन्वितम् ।
सुधायोगश्च देवेशि रोमहीनं करोति वै ९३॥

भापार्थ–सेंधा निमक, हरताल, यवक्षार, सहत इनको एकत्रित कर गुटिका बनाय लेप करे तो रोम दूर होंय ९३

प्रक्षिप्य वदनमध्ये मूलमहिंसोत्तरं सदा सदा
समरे । न भिनत्ति शास्त्रभङ्गं तूष्णीं संतिष्ठते
यावत् ॥ ९४ ॥

भापार्थ–उत्तर भागमें स्थित नीली वृक्षके मूलको यदि मुखमें धारण करे तो शत्रुका प्रेरित किया हुआ शस्त्र अंग छेदन करनेमें किसी प्रकार समर्थ न होगा परन्तु मौन भावसे स्थित रहना योग्य है अन्यथा उक्त शस्त्र अपना प्रभाव दिखानेमें समर्थ होगा ॥ ९४ ॥

दिवसकरस्य ग्रहणेऽसितभूतायाश्च पाटलामूलम्।
रविवारे पुष्यदिने वदनगतं खड्गवारणं कुरुते९५॥

भाषार्थ–सूर्यग्रहणमें पाटला मूलको उखाडकर कृष्ण चतुर्दशी अथवा रविवार या पुष्य नक्षत्रमें यदि मुखमें स्थापन करे तो शत्रुके प्रेरणा किये हुये शस्त्रका स्तम्भन होय अर्थात् अपने शरीरमें किसी प्रकारकी वेदना न होय ॥ ५५ ॥

पर्ण्यप्यनेन विधिना समाहृता वदनमध्यनिक्षिप्ता ॥ समरे शरभरवर्षं निपतन्तं वारयत्याशु ५६

भाषार्थ–यदि पर्णी भी उक्त विधान पूर्वक उखाडकर उक्त वारादिकोंमें सेवन करी जाय तो संग्राममें कैसी क्यों न शरवर्षा होय सम्पूर्णका निरोध करेगी अर्थात्–अपने शरीरमें वेदना न होने देगी ॥ ५६ ॥

योगान्तरम् ।

अस्तं गच्छति सवितारि शस्त्रस्तम्भनमाकरोति हयगन्धः । त्रिदिनानि तेन पीतो विधिवन्माघत्रयोदश्याम् ॥ ५७ ॥

भाषार्थ–माघ कृष्ण त्रयोदशीके दिन सूर्य्यके अस्त समय विधिपूर्वक तीन दिन तक अश्वगन्धका सेवन तो शत्रुप्रेरित शस्त्रका स्तम्भन होय ॥ ५७ ॥

दूरदेशान्तरगमनम् ।

शितभृङ्गकोकिलेक्षणजंघे पुंखाशिफामूलम् ।
कटितटवद्धैरेभिः समीरवन्मेदिनीं भ्रमति९८॥

भावार्थ--श्वेत भृङ्गराज, श्वेत काकजंघा, श्वेत शरपुंखा, ऐन्द्रीके बीज इन सबको एकत्रित कर कटिमें बांधे तो वायुके तुल्य पृथिवी पै गमन करनेको समर्थ होय ॥ ९८॥

मदनफलं सितजंघाक्षीरं सुरभेस्त्वथैकवर्णा-याः । भूर्जत्वक्पदलेपाद्योजनशतकं गतश्रमो गच्छेत् ॥ ९९ ॥

भावार्थ--मैनफल, श्वेत काकजंघा, एक वर्ण (रंग) वाली गौका दुग्ध, भोजपत्रकी त्वचा, इन सब औषधियोंको एकत्रित कर गौके दुग्धमें पीसकर यदि चरणतलमें लेप करे तो साधक परिश्रम शून्य हो १०० योजन अर्थात् ४०० कोश चलनेको समर्थ होगा ॥ ९९ ॥

कृकलासनक्तमालककंकालसुरेन्द्रगोपशिखि-रक्तैः । जयति गुटिकार्धयुतं शतत्रयं हेमगर्भ-
[illegible] ॥ १०० ॥

भाषार्थ--कृकलास, करञ्जरस इनके कंकालको सुरेन्द्र गोप (कृमि विशेष) मयूरका रुधिर इन सम्पूर्ण औषधियोंको एकत्रित कर गुटिका बनावे पुनः विधानपूर्वक सुवर्णमें स्थापन कर धारण करे तो साधक एकदिनमें ३५० योजन गमन करनेमें समर्थ होगा ॥ ६० ॥

सितवंशरोचनाहकमूलैश्छागलनवनीतपाचितैः पुष्ये । चरणतलसंप्रलेपात्कामितमध्वानमुपयाति ॥ ६१ ॥

भाषार्थ--श्वेत वंशरोचनको श्वेत भृङ्गराजके चूर्णमें मिश्रित कर पुष्य नक्षत्रके दिन बकरीके नवनीतमें पकाकर यदि चरणतलमें प्रलेप करे तो साधक इच्छित मार्ग गमन करनेमें समर्थ होय ॥ ६१ ॥

अकाले सूर्यग्रहणदर्शनम् ।

अंकोलतैलयुक्तं शिखिपित्तारुष्करं तथा बीजम् । एभिर्दर्पणलेपाद्ग्रहणमकालेऽपि दृश्यते भानोः ॥ ६२ ॥

भापार्थ--अंकोलका तेल, मोरका पित्ता, भिलावा इन तीनोंको एकत्रित कर यदि दर्पण (सीसा) पर लेपकर आकाशमें देखे तो अकालमें भी सूर्य ग्रहण नजर आवे ६२

रविविषये दर्पणतलं विलिप्यते यच्छिखण्डिपित्तेन। तद्योजनांतरस्थः पश्यति लोको दिवाकरग्रहणम् ॥ ६३ ॥

भापार्थ--सूर्यके सन्मुख स्थित होकर मोरके पित्तसे दर्पणको लिप्तकर योजनान्तरमें आकाशको देखे तो स्फुट सूर्यग्रहण नजर आवेगा। थोरेका तो कथनही क्या है ६३

दिवानक्षत्रदर्शनम् ।

मुनिवृक्षकुसुमसलिलैः स्रोतोऽञ्जनचूर्णनिर्मितं पुष्ये। दर्शयति दिवैव यतो नक्षत्रगणं दृगञ्जनं पुंसाम् ॥ ६४ ॥

भापार्थ–टेसूके फूलोंके जलसे स्रोतोंजनके चूर्णको घिसकर यदि पुष्य नक्षत्रके दिन नेत्रोंमें आंजे तो दिनमेंही स्फुट तारा दिखाई देय ॥ ६४ ॥

चन्द्रग्रहणदर्शनम् ।

दीपमलक्तकवर्त्यां करञ्जतैलप्रदग्धया कृत्वा।
हरिचर्मणा सुपिहितं विशालमुखभांडमध्यस्थम् ॥ ६५ ॥

भाषार्थ–रुईकी बत्तीको लाखके रससे भावना देकर फरंजके तेलसे फिर भावना देय, तत्पश्चात् उक्त बत्तिकासे दीपकको प्रज्वलित कर चोडे मुखके बर्तनमें रख देय, और वानरके चर्मसे पात्रके मुखको मढ़कर जलमें डुबोदे जब तक वह पात्र जलमें डूबा रहेगा तब तक चन्द्रग्रहण नजर आवेगा ॥ ६५ ॥

तद्वदनगतं तु तद्वच्चंद्रज्योत्स्नां विशोपयति ।
पयसि च मज्जति यावत्तावद्ग्रहणं भवेदिन्दोः ॥ ६६ ॥

भाषार्थ–यह श्लोक भी पूर्वोक्त पक्षकोही पुष्ट करताहै ६६

१ इस ग्रंथमें कथित विषय उन्हीं पुरुषोंको फलदायक होंगे जो कि मन्त्र, जप, पुरश्चरण इत्यादि क्रियाओंके ज्ञाता हों गुरु परिपाटीके अनुयायी होंगे ॥

वेशविधानम् ।

शववदनकुहरसंस्थितश्चिताग्निना दीपितो गुग्गुलुः । भूताह्नि नरमशेषं धूपादावेशयत्याशु ॥ ६७ ॥

भाषार्थ–कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन गूगलको मृतकके मुखमें स्थापन करे पुनः चिताकी अग्निसे प्रज्वलित कर धूप देय तो सम्पूर्ण संसार आवेशित होय ॥ ६७ ॥

कनकत्वमातुलानिचित्रवचाकुक्कुटांडसकलानि । आवेशयन्ति धूपात्स्पृष्टाः सचराचरं लोकम् ॥ ६८ ॥

भाषार्थ–धतूरेके बीज, विजिया, चीता, वच, कुक्कुटके अण्डेके टुकडे इन सब ओषधियोंको एकत्रित कर यदि धूप प्रयोग करे तो अवलोकन मात्रसेही सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक लोक आवेशित होय ॥ ६८ ॥

महिषरुधिरसंदिग्धः पञ्चांगः * षोडशांशविष-

---

* जड, पत्ते, छाल, पुष्प, फल, इनको पचाङ्ग कहते हैं ।

युक्तः । कनकविटपोद्भवधूपाद्रात्रौ चेष्टाहरः पुंसाम् ॥ ६९ ॥

भाषार्थ-धतूरेका पञ्चाङ्ग, षोडश भाग तेलिया इनको महिषके रुधिरमें भावना देकर शुष्क करलेय पुनः कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीके दिन धूपका प्रयोग करे तो सम्पूर्ण पुरुषोंकी चेष्टाका हरण होय ॥ ६९ ॥

विषप्रयोगविधानम् ।

सिततुरगसारमूलंरवितरुशलभश्च वृश्चिकं चापि । विषसप्तमभागसहितमेभिर्गेनाय दृष्टवद्भाति ७०॥

भाषार्थ-श्वेतकरवीरकी जड, आगके वृक्षके कीट, मैनफल, सात भाग तेलिया, इन सब औषधियोंको एकत्रित कर जलमें पीस नलिकाके ऊपर लेप कर स्थापन करदे तो जो कोई व्यक्ति उक्त नलिकाका स्पर्श करेगी वह व्यक्ति सर्पदष्ट पुरुषके तुल्य उन्मत्त भावको प्राप्त होगी७०

दिनकरदुग्धाभ्यक्ता सप्तदिनं वानरी तथा खटिका । लिखितःस्पृष्टो विषदस्ताभ्यां भुवि भवति भोगीव ॥ ७१ ॥

भावार्थ—वानर रोम, खडिया मिट्टी इन दोनोंको ७ दिनतक आकके दूधमें भिगोकर एक फलतुल्य बृहद्वटिका बनाकर भूमिमें सर्पाकार रेखा खैंचे तो जो कोई उक्त रेखाका उल्लंघन करेगा वह सर्पके विषमें व्याप्त होगा ॥७१॥

तद्दिवसजातवत्सकवर्चोभिस्तगरगर्भितागुटिकाम् । संभक्ष्य यथाकामं विषं पिवतु शूलपाणिरिव ॥ ७२ ॥

भावार्थ—तुरतके पैदा हुए बछडेके विष्ठेमें तगरके चूर्ण को मिश्रित कर गुटिका बनाकर भक्षण करे तो यथेच्छ विषके भक्षण करनेसे भी शरीर नष्ट न हो किन्तु शूलपाणि श्रीशिवजीमहाराजके तुल्य मोदको प्राप्त होय ७२

भेकद्विमुखाहिवसाकटुकीश्लेष्मान्तकपादफलानि । एभिर्विलिप्तपाणिः स्पृष्ट्वा दंशाद्विषं हरति ॥ ७३ ॥

भावार्थ—मेंढककी चर्वी, द्विमुखी सर्पकी चर्वी, कुटकी श्लेष्मान्तक वृक्ष (लहसोरेका पेड) के फल इन सबको

[वि]केचित कर हस्ततलपै लेपकर जिस व्यक्तिके दष्ट स्था-
[न]पर स्पर्श किया जायगा तत्क्षणमेंही साध्य व्यक्तिसे
[वि]ष उतर जायगा ॥ ७३ ॥

गोघृतमहिरिपुरुधिरं द्विमुखाहिपिशितकंका-
लैः । प्रलिप्ततूर्यनादस्त्रिभुवनमपि निर्विषं
कुरुते ॥ ७४ ॥

भावार्थ–गौका घृत, मयूरका रुधिर, द्विमुखी सर्पका
मांस खण्ड इन सबको मिश्रित कर तूर्यके ऊपर प्रलेप
कर शब्द करे तो शब्द मात्रके होनेहीसे त्रिभुवन भी
निर्विष होगा विष व्याप्तका तो कथनही क्या है ॥ ७४ ॥

अथ विषमज्वरहरणम् ।

नग्नादि * विधिसमाहृतबालकमूलस्य सप्त

* मध्याह्नकालमें मुक्त केश होकर शिखामें रक्षा ग्रन्थिको बांध कर षडंगविधिसे रक्षाकर आठो दिक्पालोंका आवाहनकर पचोपचार विधिपूर्वक औषधीका पूजन कर अभिमंत्रण पूर्वक प्रार्थना कर उसेऽ इसको नग्नादि विधि कहते है ॥

ळानि । क्षपयंति भूतदिवसे चतुर्थकं पाणिबन्धाच्च ॥ ७५ ॥

भापार्थ--कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीके दिन नमादि विधिपूर्वक हाउवेरकी जडको लाकर सात टुकडे करे पुनः कुमारी कन्याके काते हुए डोरेको हलदीमें रंगकर उक्त टुकडोंको ग्रन्थि बन्धन कर हस्तमें बांधलेय तो चातुर्थिक ज्वर दूर होय ॥ ७५ ॥

अथ ग्रहमोक्षोपायः।

दिग्वसनादिसुविधिना गृहीतमसितेह्निनागिनीमूलम् । तक्रेण तस्य पानात्क्षपयति चातुर्थिकं घोरम् ॥ ७६ ॥

भापार्थ-उक्त नमादि विधिपूर्वक कृष्ण चतुर्दशीके दिन नागिनीमूलको लाकर मट्ठेके साथ पान करे तो घोर चातुर्थिक ज्वर शान्त होय ॥ ७६ ॥

ओंकारचक्रहंफट्चक्रं न्यासेन हस्तं विन्यस्य । ग्रहमोक्षणं प्रकुरुते मन्त्रोऽयं भूतडामरेसिद्धः७७

भाषार्थ–ॐ चक्र हंफट् इस डामर सिद्ध मन्त्रको पट्कोणके मध्य तथा प्रतिकोणमें लिख पूजनादि विधानपूर्वक हस्तमें धारण करे तो ग्रहादि वेदनाओंसे मुक्त हो सुख पावे पट्कोण यंत्र अथवा उल्लूके दक्षिण पक्षको कुमारी कन्याके काते हुए डोरेमें बांधकर बाहुमूलमें बांधे तो उक्त फल प्राप्त होय इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं यह तन्त्रोक्त योग है ॥ ७७ ॥



गोगवलविडालशकृत्करिकररुहभुजगकवच शिखिचंद्रैः। ग्रहकेतुरयं धूपो दुग्धाह्लसुनहिंगुसंयुक्तः ॥ ७८ ॥

भाषार्थ–गौका शृंग, विलावका विष्ठा, हस्तिका नाखून सर्पकी केंचली, मयूर पक्षके चंदोवे, वच, लसुन, हींग

इन सबको कूट पीसकर धूप बनाय ग्रहग्रस्तको देय तो तत्क्षणमें ही ग्रहसे मुक्त होय अर्थात् सम्पूर्ण प्रकारके डाकिनी आदि निर्मित दोष इस धूपके प्रयोगसे शान्त होते हैं ॥ ७८ ॥

भूनागांगशिलालैः सर्पपतैलेन मार्दितः कल्कः।
निशान्धकारबहुले नृविग्रहं ज्वालयत्येपः७९

भापार्थ–गेंडुआ, मैनशिल, हरताल इन तीनों औषधियोंको सरसोंके तेलमें पीसकर कल्ककर पुनः शरीर पै लेप करे तो साधक रात्रिके अन्धकारमें अग्निके तुल्य प्रकाशको प्राप्त होय ॥ ७९ ॥

खद्योतशक्रगोपकधात्रीषणबीजतैलकल्केन ।
प्रज्वलति विग्रहाद्यं रात्रौ यल्लिप्यते किञ्चित्८०

भापार्थ–खद्योत, इन्द्रगोप, आमला, सनके बीजोंका तेल इन सबको मिश्रितकर कल्क बना जिस शरीरादि व्यक्तिपै लेप करे तो वह व्यक्ति रात्रिके समय अग्निके तुल्य प्रकाशको प्राप्त होय खद्योत, इन्द्रगोपक यह दोनों जीव विशेष हैं ॥ ८० ॥

अथाञ्जनाधिकारः ।

धूर्तमृगनेत्रचूर्णेनाञ्जितलोचनयुगः क्रमात्पश्येत् । तस्मै भूतानि तदा सिद्धद्रव्य प्रयच्छन्ति ॥ ८१ ॥

भाषार्थ-गीदड़के दोनो नेत्रोंको पृथक्पृथक् चूर्णकर दो गुटिका बनावे तत्पश्चात् उक्त बटिकाओंमेंसे दक्षिण नेत्रकी बटिकासे दक्षिण नेत्र और बाम नेत्रकी बटिकासे बाम नेत्र एवं दोनो नेत्रोंकी दोनो बटिकाओंसे पृथक् २ आंजे ता साधक पक्षादिकोंको स्फुट देखनेमे समर्थ और पक्षादिक साधकको देखनेमे समर्थ होय ॥ ८१ ॥

पटहः प्रदीपगर्भस्तनुतरहरिचर्मणा कृताच्छदनः । ग्रहमध्यगः क्षपायां चन्द्रज्योत्स्नां विशेषयति ॥ ८२ ॥

भाषार्थ-पटह (नगाड़ा) के मध्यमे प्रज्वलित दीपको रखकर पतली बन्दरकी खालसे मढकर ग्रहमध्यमे स्थापन कर देय तो चन्द्र चांदनीकी वृद्धि होय ॥ ८२ ॥

अथ वन्ध्यापुत्रजन्म ।

क्षीरातिवलापष्टिघृतवलाशर्करार्तवे काले ।
अवलिह्य संप्रसूते वन्ध्या लोकेश्वरं पुत्रम् ८३

भापार्थ–वन्ध्या स्त्रीको पुत्र प्राप्त प्रयोग । सहदेई, मुरेठी, खारइन सब औषधियोंको गोके दुग्ध तथा शर्करामें मिश्रितकर अवलेह वनाय ऋतुकाल अर्थात् मासिक धर्मके समय स्त्री सेवन करे तो वन्ध्या स्त्री भी लोकेश्वर पुत्रको पैदा करे अन्य स्त्रीका तो कथन ही क्या है ॥ ८३ ॥

अश्वत्थतरुसमुत्थं वन्दाकं संप्रगृह्य रेवत्याम् ।
वद्धेन तेन पाणौ वन्ध्या गर्भंप्रगृह्णाति॥८४॥

भाषार्थ–पीपलके वृक्षपै पैदा हुये वन्दाकको रेवती नक्षत्रके दिन कुमारी कन्याके काते हुए डोरेमें वांधकर जो स्त्री स्वहस्तमें धारण करे तो वन्ध्या भी क्यों न हो वे गर्भको प्राप्त होय । वृक्षके ऊपर जो वृक्ष पैदा हो है उसको वन्दाक कहते हैं, लोकभापामें वन्दा भी हैं । प्रयोग समय इसका चार अंगुल टुकडा लेना पै ॥ ८४ ॥

व्याघ्रक्षतभवपिशितैर्भ्रमरैर्दध्युत्पलान्वितैः कुण्डे । षण्मासप्राणधरं सप्ताहाद्व्याघ्रमिथुनं स्यात् ८५

भाषार्थ–दो भ्रमरोंको व्याघ्रके रुधिर तथा मांस और दधि विकार, उत्पल चूर्ण इन औषधियोंमेंसे प्रलिप्त कर कुण्डमें स्थापन करदे तो एक सप्ताहके पश्चात् उक्त भ्रमर जीवित षाण्मासिक व्याघ्रद्वन्द्व (जोडा) के स्वरूपको प्राप्त होंगे । उत्पल कुसुमविशेष ॥ ८५ ॥

मनुष्यदर्शनम् ।

मिथुनमलं रुधिरमैन्द्रियं कर्णाक्षिमलं प्रमथ्य तत्पयसा । हुडुसाकृतिसंवृत्तस्तैर्नरमिथुनं त्रिसप्ताहात् ॥ ८६ ॥

भाषार्थ–स्त्री पुरुषोंके शरीर, नाक, कान, नेत्र इनका मल और शुक्र इन सब मलोंको एकत्रित कर नारीके दुग्धमें मथकर पूर्ववत् कुण्डमें स्थापनकर मेषके चर्मसे कुण्डके मुखको मढ़देय तो २१ दिवसके पश्चात् एक मनुष्यद्वन्द्व उक्त कुण्डसे उत्पन्न होगा ॥ ८६ ॥

अथ वन्ध्यापुत्रजन्म ।

क्षीरातिवलापयष्टिघृतवलाशर्करर्तवे काले ।
अवलिह्य संप्रसूते वन्ध्या लोकेश्वरं पुत्रम् ८३

भावार्थ–वन्ध्या स्त्रीको पुत्र प्राप्त प्रयोग । सहदेई, मुरेठी, आरइन सब औषधियोंको गौके दुग्ध तथा शर्करामें मिश्रितकर अवलेह बनाय ऋतुकाल अर्थात् मासिक धर्मके समय स्त्री सेवन करे तो वन्ध्या स्त्री भी लोकेश्वर पुत्रको पैदा करे अन्य स्त्रीका तो कथन ही क्या है ॥ ८३ ॥

अश्वत्थतरुसमुत्थं वन्दाकं संप्रगृह्य रेवत्याम् ।
बद्धेन तेन पाणौ वन्ध्या गर्भंप्रगृह्णाति॥८४॥

भावार्थ–पीपलके वृक्षपै पैदा हुये वन्दाकको रेवती नक्षत्रके दिन कुमारी कन्याके काते हुए डोरेमें बांधकर जो स्त्री स्वहस्तमें धारण करे तो वन्ध्या भी क्यों न हो तथापि गर्भको प्राप्त होय । वृक्षके ऊपर जो वृक्ष पैदा हो जाता है उसको वन्दाक कहते हैं, लोकभाषामें वन्दा भी कहते हैं । प्रयोग समय इसका चार अंगुल टुकडा लेना चाहिये ॥ ८४ ॥

व्याघ्रक्षतभवपिशितैर्भ्रमरैर्दध्युत्पलान्वितैः कुण्डे ।
षाण्मासप्राणधरं सप्ताहाद्व्याघ्रमिथुनं स्यात् ८५

भाषार्थ-दो भ्रमरोंको व्याघ्रके रुधिर तथा मांस और दधि विकार, उत्पल चूर्ण इन ओषधियोंमेंसे प्रलिप्त कर कुण्डमें स्थापन करदे तो एक सप्ताहके पश्चात् उक्त भ्रमर जीवित षाण्मासिक व्याघ्रद्वन्द्व (जोडा) के स्वरूपको प्राप्त होंगे । उत्पल कुसुमविशेष ॥ ८५ ॥

मनुष्यदर्शनम् ।

मिथुनमलंरुधिरमैन्द्रियं कर्णाक्षिमलं प्रमथ्य तत्पयसा । डुडुसाकृतिसंवृत्तस्तैर्नरमिथुनं त्रिसप्ताहात् ॥ ८६ ॥

भाषार्थ-स्त्री पुरुषोंके शरीर, नाक, कान, नेत्र इनका मल और शुक्र इन सब मलोंको एकत्रित कर नारीके दुग्धमें मथकर पूर्ववत् कुण्डमें स्थापनकर मेषके चर्मसे कुण्डके मुखको मढ़देय तो २१ दिवसके पश्चात् एक मनुष्यद्वन्द्व उक्त कुण्डसे उत्पन्न होगा ॥ ८६ ॥

॥नितम्बबद्धंमातुलमूलं निवारयत्यग्रे। नित्यं सुरतनिषेवणकाले गर्भं सपुष्पकं दृष्टम् ॥ ८७ ॥

भाषार्थ–सुरतकालके पूर्व यदि धतूरेकी जड स्त्रीके कटिमें बांधी जाय तो गर्भपात होय अथवा सुरत समयमें ही बांधी जाय तो भी गर्भपात होय यह प्रयोग दृष्ट अर्थात् अनुभूत है ॥ ८७ ॥

संभक्ष्य यथाकाले पुराणघृतमात्रमार्तवे वापि। अनिशं सुरतासक्ता रामागर्भन्न गृह्णाति ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—यथाकाल अथवा ऋतु समय पुराने गौके घृतको यदि स्त्री भक्षण करे तो यथेच्छ सुरतके करनेसे भी स्त्री गर्भको प्राप्त न हो ॥ ८८ ॥

धात्र्यंजनस्य चूर्णं पीत्वा शीतेन वारिणा पुष्ये। गर्भतुभीतिरहिता विचरतु कामातुरा रण्डा ॥ ८९ ॥

भाषार्थ--आमलक चूर्ण, सुरमा इन दोनोंको मिलाकर पुष्य नक्षत्रमें यदि विधवा स्त्री ठंडे जलके साथ सेवन करे तो गर्भ और ऋतुको प्राप्त न हो, किन्तु गर्भभयसे शून्य होकर यथेच्छ गमन करे ॥ ८९ ॥

सदलक्तकसुरगोपकपिलाघृतसंप्रसाधितोदीपः। प्रज्वलति यत्र भवने वराङ्गभंगो न जातु सर्वस्य ॥ ९० ॥

भाषार्थ--लाखका रस, इन्द्रगोप, कपिला गौका घृत इन तीनों वस्तुओंको एकत्रित कर यदि दीपकको प्रज्वलित कर सुरतशालामें स्थापन करे तो सुरत समय वराङ्ग भंग न हो ॥ ९० ॥

श्वेतार्कतूलवर्त्या वराहमेदःप्रदिग्धया दीपः। स्तब्धं पुरुषवरांगं धारयति च निशीथिनी सर्वम् ॥ ९१ ॥

भाषार्थ--श्वेत आकके वृक्षकी रुईकी वर्त्तिका बनाकर शूकरकी चर्बीमें भिगोकर सुतशालामें दीपक प्रज्वलित

करे तो सम्पूर्ण रात्रितक सुरत करनेपर भी वरांग भंग न हो किन्तु स्तब्धता अधिक हो ॥ ९१ ॥

वृहतीसितसिद्धार्थव्याघ्रीवचोग्रगंधयासहितम् । एभिः प्रलिप्तपुंसः प्रभवति लिङ्गं हयस्येव ॥ ९२ ॥

भापार्थ–वृहती (बडी कटेरी) श्वेत सरसों, वच, उग्रगन्धा (असगंध) इन सब औपधियोंके चूर्णको पानीमें पीसकर मैथुनके गुप्त स्थानमें लगावे तो उक्त स्थान अश्ववत् दृढ़ हो जाय ॥ ९२ ॥

घृतमाक्षिकयुत(तिल)।तैलं वृहतिफलं शुकमात्मगुप्ता च । एभिर्वराङ्गवृद्धिः सप्तदिनं ताम्रभाण्डपर्युषितैः ॥ ९३ ॥

भापार्थ–गोघृत, शहत, तिलोंका तेल, वृहतीफल, शुक, पारा इन सब औषधियोंको समान भाग ले चूर्णकर सात दिन तक ताम्र पात्रमें पर्युषित कर यदि वरांग स्थानमें लगावे तो वृद्धि होय ॥ ९३ ॥

सुरसः करञ्जयुक्तः सितमार्गणपुष्पिकामूलम्।
वदनविवरान्तरस्थं स्तम्भयति नरेच्छया
बीजम् ॥ ९४ ॥

भाषार्थ--कंजुआ, पारद, पुष्पिका मूल, इन तीनों औ-
षधोंको एकत्रित कर वटिका बनाय यदि मुख विवरमें
स्थापन करे तो मनुष्यकी इच्छापूर्वक शुक्रदाढ़िमा होय॥

गोमायुगीर्णजीर्णे बदरास्थिक्षीरकीटसंयुक्तः।
धारयति पुरुषबीजं कटितटबद्धं खरस्य
पुच्छरुहैः ॥ ९५ ॥

भाषार्थ--गीदडके गुदामार्गसे निकली बेरकी गुठलीको
क्षीर कीटसे युक्तकर गधेके पूछके वालोंसे यदि मनुष्य
कटिभागमें बांध लेय तो शुक्रदाढ़िमा होय ॥ ९५ ॥

षडंघ्रिदेहचूर्णैः खरःसजर्याः सिफासमायुक्तैः।
दिवसकरतूलवर्त्या यो दीपः शुक्ररोधकः
पुंसाम् ॥ ९६ ॥

भा०--भ्रमरचूर्ण, दीर्घ शाखा मूलसे युक्तकर आकवृक्षकी रुईकी बत्ती बनाकर यदि चित्रशालामें दीपक प्रज्वलित कियाजाय तो शुक्र दार्ढिमा होय ॥ ९६ ॥

आजं वज्रीक्षीरं गव्यघृतं चरणयुगललेपेन । स्तम्भयति पुरुषशुक्रं योगोयं यामिनीं सकलाम् ॥ ९७ ॥

भावार्थ-बकरीका दूध, थुहरका दूध इनको गौके घृतमें मिश्रित कर यदि चरणतलमें लेप करे तो सम्पूर्ण रात्रि-तक शुक्र दार्ढिमा रहे किन्तु पात न हो ॥ ९७ ॥

वरांगशूलकरणम् ।

सार्द्रं क्षितिरन्ध्रगतं स्त्रीवर्चो वृश्चिकालसंविद्धम् । घोरं वराङ्गदुःखं विसृजति तस्योद्धृते शं स्यात् ॥ ९८ ॥

भावार्थ-वराङ्ग शूल उत्पत्ति कहीं जातीहै । गीले स्त्रीके आर्तवको बिच्छूके डंकमें मिश्रितकर यदि भूमिमें गाड़ देय तो स्त्रीके वराङ्गमें शूल उत्पन्न होय, यदि शान्ति करनी

स्वीकार होय तो भूमिके मध्यसे उक्त वस्तुको निकाल लेय ॥ ९८ ॥

कुष्टकरणम्

कुष्टमरातौ जनयति सप्तदिनं भुजगवदनपर्युषिता । गुञ्जाथ भवनगोधा यावत् क्वाथंप्रियालजं च पिबेत् ॥ ९९ ॥

भाषार्थ–अब कुष्टकरण कहा जाता है। चौंटली अथवा गोधा (छपकली) को सात दिनतक कृष्णसर्पके मुखमें स्थापन करदेय तत्पश्चात् निकालकर यदि शत्रु आदि व्यक्तिको खानपानमें प्रदान करें तो उक्त व्यक्तिके शरीरमें कुष्ट रोग प्राप्त होगा, "शान्ति" तीन दिनतक प्रियाल वृक्षके पञ्चाङ्ग क्वाथको सेवन करे तो कुष्ट शान्ति होय ९९॥

काकधातोद्वेगः।

काकपत्रे विलिखितं द्विकहृदयक्षतजेन काकपक्षलेखन्या । यन्नाम द्विकसंघाः खादन्ति निरंतरं तमिह ॥ १०० ॥

भापार्थ-काक पक्षकी लेखिनी (कलम) बनाकर काकपत्रके ऊपर काक (कौवा) रुधिरसे जिस व्यक्तिके नामाक्षरोंको लिखे तो निरन्तर उस व्यक्तिको काक भक्षण करेंगे अर्थात् ठोंगें मार २ दुःख देंगे ॥ १०० ॥

द्रोणहृदयरुधिरेण चूतदले यस्य नाम विन्यस्तम् । तद्भूवेतन्निहितं काकैः संभक्ष्यते सोपि ॥ १०१ ॥

भापार्थ-आमके पत्तेके ऊपर काले काकके रुधिरसे जिस व्यक्तिके नामको लिख भूमिमें गाडदेय तो उस व्यक्तिको काक ठोंगें मार २ कर भक्षण करेंगे अर्थात् काटेंगे ॥ १०१ ॥

गर्भस्तम्भनप्रयोगः।

भल्लकलिखितो डुडवित्प्रसवन्त्याः स्तम्भनं करोत्युच्चैः । गर्भस्य सपदि नार्यास्तन्नाम विदर्भितंसिद्धः ॥ १०२ ॥

भापार्थ-अब गर्भस्तम्भनप्रयोग कहा जाताहै । यदि प्रसवोन्मुखी (जिसके बालक पैदा होनेवाला हो) स्त्रीका गर्भस्तम्भन करना होय तो सरैयामें डुडवित् इन अक्षरोंसे

पुटितकर साध्य स्त्रीका नाम लिख भूमिमें गाडदेय तो निश्चय गर्भस्तम्भन होय, यह मलक लिखित योग है, इसको सत्यही समझना । यदि गर्भ मोक्षण करना हो तो उक्त सरैयांको उखेड लेय ॥ १०२ ॥

दीपस्थैर्यम् ।

कोशाम्रतैलदीपः प्रज्वलति प्रवहति प्रचण्डेऽपि । मरुति सति निश्चयमेव स्फुरन्महारत्नज्वालेव ॥ १०३ ॥

भाषार्थ–अब दीपस्थैर्यता कही जाती है । यदि आम्रतेलसे दीपकको प्रज्वलित कर (बालकर) प्रचंड हवा (आंधी) में रख दियाजाय तो भी न बुझे किन्तु तीक्ष्ण (तेज) कान्तिवाले हीरकादि रत्नोंके तुल्य स्थिर रोशनीको प्रकाश करे ॥ १०३ ॥

विषापहरणम् ।

रविशलभभवनगोधावर्तश्च मनःशिला तथा । पथ्या वृश्चिकविषं विनश्यत्येभिर्दशस्य लेपे च ॥ १०४ ॥

भाषार्थ-विच्छूके विष उतारनेका प्रयोग । अर्कवृक्ष (आकका पेड)के कीडे छिपकलीकी विष्ठा, मैनशिल हर, इन सब औषधियोंको मिश्रित कर पानीमें पीस यदि बिच्छूके काटे स्थानमें लेप करदेय तो बिच्छूका विष शीघ्र उक्त स्थानसे दूर होय ॥ १०४ ॥

पयसा दिवाकरस्य पलाशतरोर्भावितैर्मुहुर्बीजैः। गुटिका कृता प्रयुक्ता वृश्चिकविषमाशु संहरति ॥ १०५ ॥

भाषार्थ-ढाकके बीजोंके चूर्णको आकके दूधमें भावना देकर वटी बनाले, इस वटीके लेप करनेसे बिच्छूका विष दूर होजाता है ॥ १०५ ॥

अंकोलमूलतैलं दाडिमिजंब्वोश्च मूलतैलेन । मधुशर्करासमांशैर्वृश्चिकसंक्रामिणीगुटिका १०६

भाषार्थ-अंकोलकी जड, दाडिमीकी जड, जामनकी जड, और इन तीनोंके तेल समांश (बराबर) शहत और शर्करा मिलाकर गुटिका बनाय यदि सेवन करे तो बिच्छूका विष रुकजाय, अर्थात् अन्य स्थानोंमें (काटेसे दूसरी जगह) न चढे ॥ १०६ ॥

मेघादिजलस्तम्भनाधिकारः ।

दवदहनभस्मना तनुमवलिप्य स्तव्धबीज-चूर्णेन । जलधरधारापातैः पर्यटति सति न कुर्वुरो भवति ॥ १०७ ॥

भावार्थ-वनाग्निकी भस्मको स्तब्धबीजके चूर्णमें मिश्रितकर यदि शरीरमें लेप करे तो अत्यन्त मेघधाराकी वर्षामें भी स्वेच्छित (इच्छाके माफिक) गमन करे किन्तु शरीरमें भस्म नहीं घुलता ॥ १०७ ॥

पुरवंशजकृतधूपो बोधितरुत्वग्रसेन चाभ्यक्तः । असुरसुरनरैरपि न दृश्यते संस्थितपटः सार्द्रः ॥ १०८ ॥

भावार्थ-गूगल, वंशलोचन इन दोनोंको न्यग्रोध वृक्षकी त्वचा (छाल) के रसमें आर्द्र (गीला) कर यदि धूप दीजाय तो वर्तमान पट असुर (राक्षस) सुर (देवता) मनुष्य इनको भी न दिखाई दे ॥ १०८ ॥

दिनसप्तकं हि भोज्ये तालशिलेऽनाहारिणे

मयूराय । तद्गूथेन विलिप्तं न दृश्यते करतलस्थितं द्रव्यम् ॥ १०९ ॥

भावार्थ–अनाहारी (भूखे) मोरको सात दिन तक हरिताल और मैनशिल भोजन करावे तत्पश्चात् मैनशिल और हरतालके भक्षण करनेसे उत्पन्न हुए विष्ठासे लिप्तकर यदि किसी वस्तुको हाथकी हथेली पर रक्खे तो वह वस्तु अदृश्य होय अर्थात् किसीको न दीखे ॥ १०९ ॥

त्रिदिनोपितगिरिकच्छपगीर्णं जीर्णं च तालमादाय । तेन करगर्भलेपादाभरणान्याक्षिपेद्धस्तात् ॥ ११० ॥

भावार्थ–तीन दिनके भूखे गिरिकच्छप (कृकलास) को हरताल भोजन करावे तत्पश्चात् विष्ठा द्वारा निकली हुई हरतालसे जिस व्यक्तिके हस्तादिकोंमें लेप किया जाय तो उक्त व्यक्तिके आभूषणादि अनायाससे निकालनेको समर्थ होंगे किन्तु उक्त व्यक्तिको लक्षित न होगा ११०

प्रतिमाकर्पणम् ।

विपमुरुवूकवीजं भुजगपलं भवनगोधिकामेदः शाखामृगास्थियुक्तैःप्रतिमाकर्पोभवत्येभिः १११

भाषार्थ–अब प्रतिमाकर्षण कहा जाता है । विष (तेलिया) अंडके बीज, सर्पका मांस, छिपकलीका मांस, अंकोलके बीज, वानरकी हड्डी इन सब औषधियोंको एकत्रितकर जलमें पीस यदि हस्ततलम लेप करे तो स्पर्श मात्रहीसे देवादिकोंकी प्रतिमाका आकर्षण होगा॥ १११॥

जीवहरपारिजातकतालैर्हालाहलस्य पुच्छञ्च । अंकोलतैलयुक्तैराकर्षो भवति शंखशुक्तीनाम्॥

भाषार्थ–अब शंख शुक्तियोंका आकर्षण कहा जाता है। विष, पारिजात वृक्षके पुष्प, हरिताल, सर्पकी पूंछ इन सबको एकत्रित कर अंकोलके तेलमें पीसकर यदि हस्ततलमें लेप करे तो शंख शुक्तियोंका आकर्षण होय११२॥

भगसंकोचनाधिकारः ।

गिरिकर्णिकेन्द्रगोपकशतांघ्रिकाख्यसहस्रचरणश्च । इतिजनितरेणुराजो वराङ्गंघ्राणि रोहयति ॥ ११३ ॥

भाषार्थ—गिरिकर्णिका, (मल्ली) इन्द्रगोप, शतपादिका, आकका वृक्ष इन सम्पूर्ण औषधियोंको एकत्रित

कर चूर्ण वनाय यदि वराङ्ग स्थानमें मर्दन करे तो उक्त स्थान संकुचित होय ॥ ११३ ॥

ललना न भवति गम्या विचलद्गोगवलरेणुरतिलेपात् । ऊर्ध्वगविषाणलेपात्प्रयाति पूर्वां तथा प्रकृतिम् ॥ ११४ ॥

भाषार्थ—चलायमान अर्थात् हिलते हुए गौके शृङ्गके नीचेके चूर्णको यदि स्त्री वराङ्ग स्थानमें मर्दन करे तो उक्त स्थानके संकुचित होनेसे गमन योग्य न हो । यदि गौ शृङ्गके ऊर्ध्व भागके चूर्णको मर्दन करे तो पूर्ववत् वरांग स्थान होय ॥ ११४ ॥

वरांगरक्तप्रवाहः ।

प्रमदा या लंघयति द्विमुखाहिक्षतजरञ्जितं सूत्रम् । प्रगलति वरांगकुहरात्क्षयकरक्षतजनिकरस्तस्याः ॥ ११५ ॥

भाषार्थ-जो गर्भिणी स्त्री द्विमुखी सर्पके रुधिरसे रंगे हुए सूत्र (डोरा) को उल्लंघन करे तो उस स्त्रीके वरांग कुहरसे अर्थात् गर्भ स्थानसे क्षयकारी रुधिरका प्रवाह होगा ॥ ११५ ॥

महिषरुधिरप्रदिग्धः पञ्चांगो षोडशांशविष-
युक्तः । कनकवृक्षभवधूपो रात्रौ चेष्टाहरः
पुंसाम् ॥ ११६ ॥

भावार्थ-१९ भाग धतूरेका पचांग चूर्ण और षोडश (१६) भाग विष इन दोनोंको महिष रुधिरमें भावना देकर छाया शुष्क कर लेप पुनः उक्त द्रव्यसे यदि रात्रिसमय धूपका प्रयोग करे तो पुरुष निश्चेष्टित अर्थात् काष्ठकी पुतलीके तुल्य स्थिर भावको प्राप्त होय ॥ ११६ ॥

नरकाणीकरणम् ।

रजनीसमये दीपो निम्बजवन्दाकरेणुसंयुक्तः ।
प्रज्वलति च यत्र स्थाने भवन्ति काणा नरा-
स्तत्र ११७ ॥

भावार्थ-दीप प्रज्वालन करनेसे मनुष्यको काणत्वकी प्राप्ति । निम्ब वृक्षके स्कन्ध भागमें जो छोटे २ निम्ब वृक्ष पैदा होजाते हैं उनको निम्बजवन्दाक वृक्ष कहते हैं । वन्दाक पंचांगके चूर्णसे मिश्रितकर यदि रात्रि समय दीपक प्रज्वलित किया जाय तो देखनेवाले मनुष्य काण-

त्व भावको प्राप्त होंय अर्थात् एक नेत्रसे शून्य प्रतीत होंय ॥ ११७ ॥

अन्धीकरणवोधः ।

गुञ्जायाः फलमूलैर्मोचाकुसुमैश्च दृष्टिहा धूपः । पयसः पातात्स्वस्थो भवति पुमान्भ्राभराज्य-धूपाद्वा ॥ ११८ ॥

भाषार्थ–अन्धीकरण कहा जाता है । गुंजा फल, चांटली, और गुंजामूल, धातकी पुष्प इन औषधियोंको एकत्रितकर जिस व्यक्तिको धूप प्रयोग करे तो वह व्यक्ति अन्धभावको प्राप्त होय । दुग्धके पान करनेसे पूर्ववत् होय अथवा मधु गोघृत इनको मिश्रित कर पुनः धूपका प्रयोग करे तो स्वस्थता प्राप्त होय ॥ ११८ ॥

कलहकरणम् ।

निदध्याद्यत्र भवने मध्यंदिनलुठितखरमहिष-रेणुः । शाम्यति तत्र न कलहः सुरभैरवो वामपाणिनानित्यम् ॥ ११९ ॥

भाषार्थ--दुपहरकालमें धूलिमें लोटे हुये गर्दभ और भैंसेके शरीरके नीचेकी धूलिको वाम हस्तमें उठाकर जिस

व्यक्तिके गृहमें फेंकदे तो उस व्यक्तिके गृहसे किसी समय कलह (लड़ाई) शान्त न हो ॥ ११९ ॥

पुष्ये यवैः कपाले निक्षिप्तैः शस्त्रशूलभिन्नस्य । आविकपयोभिषिक्तैस्तत्फलमाला नरं निगूहयति ॥ १२० ॥

भाषार्थ--पुष्यनक्षत्रको शस्त्रभिन्न (शस्त्रसे कटेहुए) पुरुषके कपालमें यवोंको बपन (बोना) कर बकरीके दूधसे सींचे तत्पश्चात् उक्त यवोंकी माला बनाकर जिस व्यक्तिके गलेमें डाले तो वह व्यक्ति अदृश्य अर्थात् किसीको न दीखे ॥ १२० ॥

अथ मृन्मयगजमदः ।

मृद्वारणकुम्भस्थलरंध्रात्पिचुमन्दसर्जनिर्यासम् । दिनकरकिरणस्पर्शान्मदगजलीलां विधास्यति ॥ १२१ ॥

भाषार्थ--मृत्तिकासे निर्माण किये हुए गजके गण्डस्थलमें स्थित छिद्रमें पिचुमन्द सर्ज निर्यास यह दो औषधियां रखकर सूर्यकी किरणोंके स्पर्श करानेसे अर्थात् धूपमें

तसे उक्त गज मदवाले गजकी लीलाको धारण करेगा ॥ १२१ ॥

प्रविलिप्य वामपादं त्रिकटुकसंयुक्तरासभीज रया । त्यजति फलकुसुमनिकरं ताडितमात्रो द्रुमस्तेन ॥ १२२ ॥

भाषार्थ—त्रिकटु (सोंठ मिर्च पीपल) गधीकी जरायु इन सबको एकत्रित कर वाम पादमें लेपकर यदि जिस किसी वृक्षमें ठोकर मारे तो तत्क्षण ताड़न मात्रहीसे उक्त वृक्षके फल, फूल, पत्ते, सब पृथिवीमें गिर पड़ेंगे किन्तु ठुण्ठ वृक्ष बाकी रहजायगा ॥ १२२ ॥

स्पृष्टः करकमलेन त्रिकटुकसमांजरायुलिप्तेन। मुञ्चति फलकुसुमचयं वृक्षः खलु कामवृक्ष इव ॥ १२३ ॥

भाषार्थ-सोंठ, मिर्च, पीपल, कुत्तीकी जरायु इन सबको एकत्रित कर निज हस्तमें प्रलेप कर जिस वृक्षको स्पर्श करे तो वह वृक्ष स्पर्श मात्रसे ही फल, फूल प्रदान करे जैसे कि कल्पवृक्ष इच्छामात्रके होते ही स्वयं कामनादिकोंका प्रदान करता है ॥ १२३ ॥

दुग्धस्य घृतोत्पादनम् ।

दिनकरदुग्धाभ्यक्ते कुम्भेऽस्मिन्घृतपलैकसंयुक्तम् । क्षीरं यावत्सोष्णं तावद्विनिवेशितं सर्पिः ॥ १२४ ॥

भावार्थ–नवीन (नया) घटको भीतरसे आकके दुग्धसे लिप्त कर एवं सात वार छायामें सुखाकर एक पल परिमाण घृतसे युक्त कर गर्म दुग्धको उक्त घटके अन्दर डाल देय तो उक्त दूध गोघृतके तुल्य प्रतीत (मालूम होना) होगा ॥ १२४ ॥

जलतक्रीकरणम् ।

प्रत्यग्रकुम्भगर्भं भानुक्षीरेण भावयेद्बहुशः । प्रक्षिप्तमात्रमंभो भवति हि तस्मिन्नवं तक्रम् १२५

भावार्थ--जलको मट्ठा बनानेकी विधि कही जातीहै । नवीन घटको सात वार आकके दूधसे लिप्त कर छायामें शुष्क करले तत्पश्चात् उक्त घटमे जल भरदे तो उक्त जल नवीन तक्र (मट्ठा)के सदृश (बराबर)प्रतीत होगा१२५॥

तक्रस्य दधिकरणम् ।

अर्कक्षीराभ्यक्ते तद्वच्छुष्के कपित्थफलगर्भः।
चूर्णीकृतः प्रयुक्तस्तक्रं दधिभावमानयति १२६

भावार्थ--मट्ठेसे दधि बनानेकी विधि । पूर्ववत् घट क्रियाको करके तक्र भरकर ऊपरसे कपित्थ चूर्ण बुरकादे तो उक्त तक्र दधि होजायगा ॥ १२६ ॥

मृतसंजीवनम् ।

उपरतवशशुष्काणामारुष्कररसलिप्तपार्श्वाणा-
म् । शीताम्भसि मत्स्यानां भवति पुनर्जीवितं
निमिषात् ॥ १२७॥

भावार्थ--अब मृतसंजीवन प्रयोग कहा जाता है। मृत्युको प्राप्त होकर सूखे हुए मत्स्यों (मच्छियां) को भिलावेंसे लिप्त करके शीतल जलमें छोडदेय तो (उसी वक्त) उक्त मत्स्य जीवित होंगे ॥ १२७ ॥

नरनारीगुह्यबंधमोक्षः ।

पुरुषांगनयोरचिरादीर्घग्रीवास्थिरन्ध्रनिक्षिप्तः ।

कुरुते वरांगबन्धं सुरते मृतपुरुषपार्श्वजः शंकुः ॥ १२८ ॥

भाषार्थ-सुरतासक्त नरनारियोंका गुह्यबन्धमोक्ष कहा जाता है । मृतक पुरुषके पार्श्व (बगल) के शंकुको लेकर उष्ट्र ग्रीवाकी अस्थिके छिद्रमें प्रवेश करे तो सुरतासक्त नरनारीका वराङ्ग बन्धन होय यदि उक्त शंकु उष्ट्र ग्रीवास्थिसे अलग करदिया जाय तो वरांग बंधन छूटजाय१२८

अथासनबन्धः ।

सरिदुभयतटान्तमृदा सुरतातुरसारमेयरोमाणि । सर्वासनबन्धकरी गुटिकैषा कोलतैलसंयुक्ता ॥ १२९ ॥

भाषार्थ-आसन बन्ध कहा जाता है । सुरतासक्त कुक्कुर और कुक्कुरीके रोम, नदीके दोनों तटोंकी मृत्तिका इन सबको मिश्रित कर एक गुटिका बना जिस व्यक्तिके ऊपर प्रयोग करना स्वीकार होय उस व्यक्तिके नामको लेकर अंकोलाके तेलमें छोडदे तो वह मनुष्य जिस आसन

अर्थात् घोडा, हाथी, ऊंट इत्यादिकोंपे बैठा होगा तो वहीं बैठा रह जायगा किन्तु वहांसे उठ न सकेगा यदि उक्त गुटिका तेलमेंसे निकाल लीजायगी तो आसन मोक्ष होजायगा ॥ १२९ ॥

नयनयुगरश्मिमध्यगकेन्द्रे हि चन्द्रमंडलाभ्यासात् । आविर्भवति नराणामन्तर्ज्योतिस्तथान्धकारेऽपि ॥ १३० ॥

भापार्थ-जो मनुष्य सावधान चित्त होकर नेत्र ज्योति द्वारा चन्द्रमण्डलके अवलोकनका अभ्यास करते हैं उन मनुष्योंको अन्तरज्योति प्राप्त होती है कि जिसके द्वारा मनुष्य अन्धकारमें भी देखनेको समर्थ होता है ॥ १३० ॥

गुरुमुखतोऽधिगतं यच्छास्त्रान्तरश्च यन्मया ज्ञातम् । अनुभवमार्गे नीत्वा तन्मध्यात्किञ्चिदिह दृष्टम् ॥ १३१ ॥

भापार्थ-जो मैंने गुरुमुखसे प्राप्त किया है और जो कुछ शास्त्रोंके देखनेसे प्राप्त किया है उस सम्पूर्ण विपयको

अनुभव सिद्ध करके इस योगमाला नाम ग्रन्थ द्वारा प्रकाश किया है ॥ १३१ ॥

आश्चर्य्यरत्नमाला नागार्जुनविरचितानुभव-सिद्धा । सकलजनहृदयदयिता समर्पिता सुव्रतो जयति ॥ १३२ ॥

भाषार्थ-सिद्धनागार्जुनके अनुभवसे विरचित (सिद्ध-नागार्जुनकी अजमाई हुई) आश्चर्यरत्नोंसे प्रकाशवाली छन्दसूत्रआर्य्याछन्दसे गुम्फित, यह योगरत्नमाला रसिक पुरुषोंको प्राणप्यारी दयिता (स्त्री) के तुल्य आनन्द देती हुई जयको प्राप्त होय ॥ १३२ ॥

आर्य्यप्रार्थना ।

यदशुद्धमिह निरूपितमार्य्यास्तत्क्षम्यतां प्रमादं मे । कृपया विशोध्यतां यत्को नो विगलति प्रमादनिवहेन ॥ १३३ ॥

भाषार्थ-अब ग्रन्थ समाप्ति समयमें आर्य पुरुषोंसे प्रार्थना की जाती है, हे आर्य्य पुरुषो ! यदि प्रमादवश

मुझसे इस ग्रन्थमें कुछ अशुद्धि हो गई हो तो कृपापूर्वक क्षमाकर शुद्ध करलो क्योंकि ऐसा कोई आर्य्य पुरुष नहीं है कि जिससे भूल (गलती) न होती हो ॥ १३३ ॥

श्रीनृपविक्रमसमये द्वादशनवपङ्क्तिरंकिते वर्षे ।
रचिता गुणाकरेण श्वेताम्बरभिक्षुणा विवृतिः १३४

भाषार्थ--यह योग रत्नमाला नाम ग्रन्थ श्वेताम्बर भिक्षुने १२९६ श्रीविक्रमके सम्वतमें बनायाथी ॥ १३४ ॥

　　समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

